Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

34

नरेंद्र कोहली के 'महासमर' में प्रस्तुत धर्म और दर्शन

भावना सचिन प्रजापति
शोधछात्र
कवयित्री बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव

डॉ. विजय एकनाथ सोनजे
शोध निर्देशक सहाय्यक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
धनाजी नाना महाविद्यालय, फैजपुर, ता. यावल, जि. जलगाँव

प्रस्तावना:

नरेंद्र कोहली का महासमर आधुनिक हिंदी साहित्य की एक ऐसी पौराणिक उपन्यास-श्रृंखला है जिसमें धर्म और दर्शन को जीवन, राजनीति, संबंधों और संघर्षों के व्यावहारिक धरातल पर नए अर्थों में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ धर्म परंपरागत नियम नहीं, बल्कि परिस्थितियों और कर्तव्य के अनुसार बदलने वाला नैतिक सत्य बनकर उभरता है। नौ खंडों—बंधन से लेकर आनुषंगिक तक—कथा के हर चरण में धर्म नए प्रश्न और नए उत्तरों के साथ पाठक के सामने आता है। कोहली दिखाते हैं कि धर्म कोई स्थिर व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सक्रिय संवेदना है जो मनुष्य के निर्णयों को दिशा देती है। इस प्रकार महासमर धर्म और दर्शन की आधुनिक व्याख्या का श्रेष्ठ उदाहरण बन जाता है।

1. धर्म की मूल अवधारणा : कर्तव्य, न्याय और समयानुकूल सत्य-

धर्म की कोहली-विवेचना का प्रारम्भ बंधन खंड से होता है, जहाँ भीष्म की प्रतिज्ञा धर्म के प्रथम द्वंद्व का रूप लेती है। भीष्म यह मानते हैं कि "जिससे समाज का संतुलन बना रहे, वही धर्म है", परंतु कथा संकेत करती है कि अत्यधिक कठोर प्रतिज्ञा भविष्य में असंतुलन भी ला सकती है। भीष्म का त्याग एक ओर आदर्श है, दूसरी ओर वही प्रतिज्ञा आगे चलकर हस्तिनापुर के विनाश का कारण बनती है। इससे यह संदेश मिलता है कि धर्म को समय और परिणाम दोनों के आलोक में समझा जाना चाहिए।

अधिकार खंड में धर्म सत्ता और न्याय के रूप में विस्तार पाता है। धृतराष्ट्र के निर्णयों के प्रसंग में यह भाव उभरता है कि "राजा का धर्म न्याय है, न कि पक्षपात।" विदुर बार-बार धृतराष्ट्र को समझाते हैं कि धर्म का पहला सूत्र निष्पक्षता है। परंतु धृतराष्ट्र का मोह धर्म की राह को धुंधला कर देता है। यहाँ धर्म एक चेतावनी बनकर सामने आता है—यदि सत्ता न्याय से अलग हो जाए तो राज्य विनाश की ओर बढ़ता है।

कथा का तीक्ष्ण नैतिक पक्ष कर्म और धर्म खंडों में उभरता है, जहाँ द्रौपदी सभा में प्रश्न करती है कि "यदि न्याय नहीं, तो धर्म कहाँ?" यह प्रश्न महाभारत और महासमर दोनों की नैतिक धुरी है। भीष्म, द्रोण और कृप जैसे विद्वान मौन रह जाते हैं—यह मौन धर्म के विफल होने का संकेत है। इस प्रसंग का भाव यह है कि धर्म केवल उपदेश नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस है।

अंततः धर्म का आधुनिक रूप अंतराल और प्रच्छन्न में देखा जाता है, जहाँ पात्र अपने भीतर धर्म की खोज करते हैं। युधिष्ठिर यह समझते हैं कि "धर्म कठिन है, परंतु कठिनाई में ही उसे निभाना आवश्यक है।" वनवास, कष्ट और संघर्ष धर्म को केवल धार्मिक अवधारणा नहीं रहने देते, बल्कि मनुष्य का आंतरिक संयम और निरंतर आत्म-जागरण बनाते हैं।

2. व्यक्तिगत धर्म (स्वधर्म) और उसके नैतिक अंतर्विरोध-

बंधन और अधिकार में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि हर पात्र का अपना धर्म है—भीष्म का व्रत, विदुर का सत्य, कर्ण का मित्र-धर्म, अर्जुन का योद्धा-धर्म, युधिष्ठिर का नैतिक धर्म। परंतु यह सभी धर्म आपस में टकराते हैं। कोहली दिखाते हैं कि मानव जीवन में धार्मिक संकट इसलिए नहीं आते कि धर्म कम है, बल्कि इसलिए आते हैं कि धर्म अनेक हैं।

भीष्म का स्वधर्म त्याग और वफादारी पर आधारित है। वे मानते हैं कि प्रतिज्ञा ही उनका धर्म है। कथा कई स्थानों पर यह भाव व्यक्त करती है कि "भीष्म की प्रतिज्ञा जितनी महान थी, उतनी ही कठोर भी।" वे न्याय देखते हैं, पर शपथ उन्हें रोक लेती है। उनका धर्म आदर्श है पर परिणामों में दुखद है—और यही व्यक्तिगत धर्म का संकट है।

कर्ण का धर्म मित्रता पर आधारित है। दुर्योधन ने जब उसे सम्मान दिया, तो उसने स्वयं से कहा कि "सम्मान का ऋण जीवनभर चुकाना चाहिए।" वह जानता है कि दुर्योधन का मार्ग अधर्म है, पर उसका विश्वास है कि "धर्म निभाने में सुविधा देखना धर्म नहीं।" कोहली कर्ण के धर्म को करुणा और पीड़ा से भरा मनोवैज्ञानिक संघर्ष बताते हैं।

अर्जुन का धर्म कर्तव्य है, और यही धर्म प्रत्यक्ष और निर्बन्ध में गहराई से उभरता है। युद्धभूमि पर उसे लगता है कि "धर्म और अधर्म दोनों उसके ही सामने खड़े हैं।" कृष्ण उसे बताते हैं कि धर्म केवल भाव नहीं, बल्कि कर्म है। अर्जुन का व्यक्तिगत धर्म इसी क्षण से निर्णय की शक्ति पाता है—और वह युद्ध को धर्म के रूप में स्वीकार करता है।

3. राजधर्म : नैतिक सत्ता का दार्शनिक आधार-

राजधर्म के प्रश्न को अधिकार, कर्म और अंतराल में अत्यंत गहराई से चित्रित किया गया है। धृतराष्ट्र राजधर्म की विफलता का प्रतीक हैं। वे जानते हैं कि दुर्योधन गलत है, पर बार-बार कहते हैं, "मैं पुत्र-वियोग सह नहीं सकता।" कोहली इस प्रसंग को इस प्रकार रूप देते हैं कि जब राजा धर्म से विचलित हो जाए, तो राज्य का संतुलन बिगड़ जाता है और प्रजा भी असुरक्षित हो जाती है।

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

विदुर राजधर्म के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि "राजा का धर्म सत्य और न्याय है।" पर उनकी नैतिकता धृतराष्ट्र की कमजोरी से दब जाती है। यह संघर्ष यह सिद्ध करता है कि धर्म की रक्षा केवल ज्ञान से नहीं, शक्ति और दृढ़ निश्चय से होती है।

युधिष्ठिर राजधर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करते हैं। वे सत्ता को सम्मान का साधन नहीं, बल्कि दायित्व का केंद्र मानते हैं। उनके विचारों का भाव यह है कि "राजा पहले धर्म का सेवक है, बाद में राज्य का स्वामी।" कोहली बताते हैं कि युधिष्ठिर का धर्म संयम, सत्य और न्याय का संतुलन है।

कृष्ण राजधर्म को राजनीतिक और नैतिक दोनों रूपों में पुनर्परिभाषित करते हैं। उनका विचार यह है कि "अधर्म के प्रसार पर मौन रहना भी अधर्म है," इसलिए वे युद्ध को आवश्यक धर्म बताते हैं। इस प्रकार राजधर्म कोहली की दृष्टि में न्याय की स्थापना और व्यवस्था की रक्षा का सक्रिय सिद्धांत है।

4. स्त्री-धर्म और द्रौपदी की न्याय-चेतना-

द्रौपदी महासमर में धर्म और न्याय दोनों की आधुनिक आवाज़ है। कर्म और धर्म खंडों में उसका प्रश्न—"यदि मैं वस्तु नहीं, तो मुझे दाँव पर किस अधिकार से रखा गया?"—सम्पूर्ण कथा का नैतिक केंद्र बन जाता है। यह केवल स्त्री के अधिकार का प्रश्न नहीं, बल्कि धर्म की जड़ों की परीक्षण-भूमि है। कोहली द्रौपदी को परंपरागत आदर्श स्त्री नहीं, बल्कि संघर्षशील चेतना के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सभा में जब सभी योद्धा मौन रहते हैं, तो कथा संकेत करती है, "धर्म का सबसे बड़ा शत्रु मौन है।" द्रौपदी अपने अधिकार को धर्म का अंग मानकर खड़ी होती है—यह आधुनिक स्त्री-धर्म की व्याख्या है। वनवास में उसका धैर्य धर्म के दूसरे रूप को प्रकट करता है—सहनशीलता और संकल्प। कोहली यह भाव रखते हैं कि "धर्म केवल विजय में प्रकट नहीं होता; पीड़ा में भी उसका मूल्य दिखता है।" द्रौपदी हर परिस्थिति में धर्म की खोज करती है—यही उसकी शक्ति है।

युद्ध के बाद द्रौपदी का मातृत्व शोक धर्म को करुणा में बदल देता है। वह बदले की आग में नहीं, बल्कि मानवीय पीड़ा में धर्म की व्याख्या करती है। इससे यह जाहिर होता है कि धर्म कठोर नियम नहीं, बल्कि संवेदनाओं की गहराई में खिलने वाला मानवीय सत्य है।

5. कृष्ण का कर्मयोग और दार्शनिक दृष्टिकोण-

कर्मयोग महासमर का सबसे शक्तिशाली दार्शनिक स्तंभ है। कृष्ण हर प्रसंग में यह सिखाते हैं कि "कर्तव्य ही धर्म है।" अर्जुन जब युद्ध से विमुख होता है, तो कृष्ण कहते हैं कि भावानुसार—"कर्तव्य से भागना धर्म नहीं, उससे टकराना धर्म है।" यह कर्मयोग का व्यावहारिक स्वरूप है।

कृष्ण यह भी बताते हैं कि धर्म केवल फल पर आधारित नहीं, बल्कि मन की निष्ठा पर आधारित है। उनका विचार है कि परिणाम अनिश्चित होते हैं, लेकिन कर्म मनुष्य के हाथ में है। इस विचार की पुनरावृत्ति प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष में बार-बार दिखाई देती है।

कर्मयोग का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वह अनासक्ति और समर्पण सिखाता है। कृष्ण कहते हैं कि "कर्म में राग नहीं, सत्य होना चाहिए।" इससे धर्म का स्वरूप बहुत स्पष्ट हो जाता है—धर्म वह है जिसमें कर्तव्य और विवेक दोनों समाहित हों।

कृष्ण का दर्शन यह भी दिखाता है कि केवल शांतिवाद धर्म नहीं होता; कभी-कभी अन्याय के विरुद्ध युद्ध ही धर्म होता है। कोहली स्पष्ट कहते हैं कि जब अधर्म बढ़ जाए, तो धर्म को सक्रिय होना अनिवार्य है।

6. अहंकार, नियति और मनुष्य का धार्मिक संघर्ष-

दुर्योधन का अहंकार धर्म के सबसे बड़े शत्रु के रूप में चित्रित है। उसका विचार—"जिसे मैं उचित मानूँ वही धर्म है"—अधर्म की जड़ है। कोहली दिखाते हैं कि शक्ति जब विवेकहीन हो जाए, तो अहंकार उसे विनाश की ओर ले जाता है।

कर्ण का संघर्ष नियति और पुरुषार्थ की सांघातिक टकराहट है। वह बार-बार महसूस करता है कि "भाग्य ने उसके साथ न्याय नहीं किया," लेकिन फिर भी वह अपने निर्णयों की जिम्मेदारी लेता है। इस प्रसंग से कोहली कहते हैं कि धर्म बाहरी परिस्थितियों से नहीं, आंतरिक निर्णयों से जन्म लेता है। अभिमन्यु-वध, द्रोण-वध, कर्ण-वध—इन सभी प्रसंगों में नियति और धर्म एक-दूसरे से उलझते हैं। कथा का संदेश है कि "नियति मनुष्य की परीक्षा है, नियति बहाना नहीं।"

युद्ध के बाद पांडवों द्वारा राज्यत्याग धर्म के उच्चतम स्वरूप को दर्शाता है—वैराग्य, करुणा और आत्मबोध। धर्म अंततः बाहरी युद्ध का नहीं, बल्कि आंतरिक शांति का मार्ग बन जाता है।

निष्कर्ष:

नरेंद्र कोहली ने महासमर में धर्म और दर्शन को केवल पौराणिक संदर्भों में नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य की संवेदनाओं, निर्णयों और संघर्षों के बीच व्याख्यायित किया है। धर्म यहाँ न्याय, कर्तव्य, करुणा, विवेक और सक्रिय प्रतिरोध का समसामयिक सत्य बनकर उभरता है। नौ खंडों में फैली कथा यह संदेश देती है कि धर्म कोई स्थिर नियम नहीं, बल्कि परिस्थितियों में सत्य की खोज है। कोहली का दर्शन मनुष्य को कर्म, न्याय और विवेक के मार्ग पर चलने का प्रेरक सिद्धांत बन जाता है।

संदर्भ–ग्रंथ–सूची :

1. महासमर (खंड 1–9) – नरेंद्र कोहली, वाणी प्रकाशन।

2. नरेंद्र कोहली के पौराणिक उपन्यास : एक आलोचनात्मक अध्ययन – डॉ. नीलिमा मिश्र, साहित्य अकादमी।
3. महासमर : एक पुनर्विश्लेषण – डॉ. ममता सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ।
4. नरेंद्र कोहली का महाकाव्य–विस्तार – डॉ. उर्मिला तिवारी, प्रभात प्रकाशन।
5. महासमर और आधुनिक दृष्टि – डॉ. सुनीता द्विवेदी।
6. नरेंद्र कोहली : जीवन और साहित्य – डॉ. कुसुम अंसल, साहित्य भंडार।
7. महासमर के पात्र : मनोवैज्ञानिक अध्ययन – डॉ. अरुणिमा सिंह।
8. महासमर का कथ्य–विस्तार – डॉ. योगेंद्र चौहान, एशियन बुक्स।
9. नरेंद्र कोहली के साहित्य में धर्म-दर्शन – डॉ. मीरा कुमारी, साहित्य अकादमी।
10. महासमर में स्त्री–चेतना – डॉ. शुभ्रा वर्मा, वाणी प्रकाशन।
11. नरेंद्र कोहली : उपन्यास और दृष्टि – डॉ. कमलाकर त्रिपाठी, लोकभारती।
12. महासमर और नैतिक मूल्य – डॉ. संगीता शर्मा, राजकमल।
13. नरेंद्र कोहली के कथानक का अध्ययन – डॉ. रामनारायण सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ।
14. महासमर : संरचना और शिल्प – डॉ. नीलांबरी शुक्ल, वाणी प्रकाशन।